IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आधुनिक भारत में न्यायपालिका की सामाजिक न्याय के प्रति सक्रियता का विश्लेषण

प्रो. गोपाल प्रसाद [1] ,कु. सरिता [2]

[1]आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
[2]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर

सारांश (Abstract):

यह शोध पत्र आधुनिक भारत में न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) के माध्यम से सामाजिक न्याय (Social Justice) की स्थापना में न्यायपालिका की सक्रिय और विकसित होती भूमिका का विश्लेषण करता है। स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में कार्यपालिका और विधायिका की निष्क्रियता और कमियों के परिणामस्वरूप न्यायपालिका ने अपनी पारंपरिक भूमिका से आगे बढ़कर जनहित याचिका (PIL) जैसे उपकरणों का उपयोग किया, जिससे समाज के वंचित और कमजोर वर्गों के अधिकारों की रक्षा हुई। प्रमुख संवैधानिक प्रावधानों और ऐतिहासिक फैसलों (जैसे *मेनका गांधी बनाम भारत संघ, केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य,* विशाखा दिशानिर्देश) का विश्लेषण किया गया है। कि न्यायिक सक्रियता ने शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण और मानवाधिकारों जैसे क्षेत्रों में प्रगतिशील सामाजिक नीतियों को बढ़ावा दिया है, लेकिन साथ ही शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत और न्यायिक अतिरेक (Judicial Overreach) की बढ़ती आलोचनाओं पर भी प्रकाश डालता है। निष्कर्षतः, न्यायिक सक्रियता सामाजिक न्याय का एक आवश्यक उपकरण है, किंतु इसकी प्रभावशीलता और वैधता बनाए रखने के लिए न्यायिक संयम (Judicial Restraint) और संस्थागत संतुलन अपरिहार्य हैं। आधुनिक भारत में न्यायपालिका केवल कानून की व्याख्याता नहीं रही, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन की एक सशक्त प्रेरक शक्ति बन गई है। न्यायपालिका ने अपने विभिन्न निर्णयों और जनहित याचिकाओं (PIL) के माध्यम से समाज के कमजोर वर्गों, दलितों, महिलाओं, श्रमिकों तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा में अग्रणी भूमिका निभाई है। यह शोधपत्र भारतीय न्यायपालिका की सामाजिक न्याय के प्रति सक्रियता, उसके ऐतिहासिक विकास, प्रमुख निर्णयों तथा उसके समकालीन प्रभाव का विश्लेषण करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): न्यायपालिका, सामाजिक न्याय, जनहित याचिका, संविधान, समानता, मानवाधिकार, न्यायिक पुनर्विलोकन, विधि का शासन |

परिचय (Introduction):

भारत का संविधान अपने मूल में सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय की भावना को निहित करता है। अनुच्छेद 14, 15, 16 और 21 जैसे अनुच्छेद नागरिकों को समानता और गरिमा का अधिकार प्रदान करते हैं। न्यायपालिका, विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने इन संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की है जिससे समाज के पिछड़े, दलित, आदिवासी और महिला वर्गों को न्याय सुनिश्चित किया जा सके। स्वतंत्रता के बाद न्यायपालिका ने "सामाजिक क्रांति के उपकरण"

के रूप में स्वयं को पुनः परिभाषित किया और कई ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को सशक्त किया। आधुनिक भारत का संविधान अपनी प्रस्तावना में ही सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करने का संकल्प लेता है। हालांकि, स्वतंत्रता के दशकों बाद भी, समाज के वंचित और शोषित वर्गों के लिए यह संवैधानिक आदर्श एक दूर की कौड़ी बना रहा। विधायिका और कार्यपालिका की अपर्याप्तता, निष्क्रियता, और कभी-कभी तो जानबूझकर की गई उपेक्षा के कारण, न्याय और समानता के सिद्धांत धरातल पर उतर नहीं पाए। इसी पृष्ठभूमि में, न्यायपालिका ने अपने पारंपरिक दायरों से बाहर निकलकर एक सक्रिय (Proactive) भूमिका अपनाई, जिसे न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) के नाम से जाना जाता है। भारतीय लोकतंत्र में न्यायिक सक्रियता एक प्रभावशाली संवैधानिक प्रवृत्ति के रूप में उभरी है, जिसका मुख्य उद्देश्य संविधान की मूल आत्मा की रक्षा और सामाजिक न्याय का विस्तार करना है।

न्यायिक सक्रियता का उदय और सामाजिक न्याय से जुड़ाव भारत में न्यायिक सक्रियता का दौर 1970 के दशक के उत्तरार्ध में शुरू हुआ, जिसे जनहित याचिका (Public Interest Litigation - PIL) के आगमन से एक नई दिशा मिली। PIL ने न्याय के द्वार को सामान्य नागरिक के लिए खोल दिया, जिससे कोई भी व्यक्ति या संस्था समाज के किसी भी वंचित वर्ग के अधिकारों के उल्लंघन के लिए सीधे न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता था। न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती और न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्ण अय्यर जैसे प्रगतिशील न्यायाधीशों ने 'जीवन के अधिकार' (अनुच्छेद 21) की व्याख्या का विस्तार किया। इस विस्तार ने न केवल व्यक्ति की शारीरिक स्वतंत्रता को, बल्कि गरिमा के साथ जीवन जीने के अधिकार को भी समाहित किया। शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पर्यावरण, और आजीविका जैसे सामाजिक-आर्थिक अधिकार इसी न्यायिक सक्रियता के माध्यम से मौलिक अधिकारों के दायरे में आए। इस प्रकार, न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय के लिए एक संवैधानिक संरक्षक की भूमिका निभाई, जहाँ कार्यपालिका और विधायिका विफल रही।

शोध का उद्देश्य :

1. भारत में न्यायपालिका की सामाजिक न्याय के प्रति भूमिका का मूल्यांकन करना।
2. न्यायपालिका द्वारा दिए गए प्रमुख निर्णयों का विश्लेषण करना जिन्होंने सामाजिक न्याय को सशक्त किया।
3. न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम के बीच संतुलन को समझना।
4. सामाजिक न्याय की दिशा में न्यायपालिका के योगदान की सीमाओं और संभावनाओं का अध्ययन करना।

5. न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) की वैचारिक आधारशिला और इसके उद्भव के कारणों की पड़ताल करना।
6. यह समझना कि न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय (Social Justice) के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनी पारंपरिक सीमाओं से आगे बढ़कर किस प्रकार भूमिका निभाई है।
7. जनहित याचिका (Public Interest Litigation - PIL) जैसे न्यायिक नवाचारों की कार्यप्रणाली और समाज के वंचित वर्गों तक न्याय की पहुँच सुनिश्चित करने में इनकी सार्थकता का विश्लेषण करना।
8. यह जाँच करना कि जनहित याचिका ने किस प्रकार सामुदायिक अधिकारों (Community Rights) और मानवाधिकारों (Human Rights) के संरक्षण को बढ़ावा दिया है

साहित्य समीक्षा :

1. **बक्शी, यू.** (1980). *Indian Supreme Court and politics*. Eastern Book Company. यह पुस्तक न्यायिक सक्रियता के प्रारंभिक दौर और भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के राजनीतिक संदर्भ में इसकी भूमिका पर एक मूलभूत (Foundational) कार्य है।
2. **परांजपे, ना. वि.** (2021). *लोकहितवाद, विधिक सहायता एवं सेवाएँ, लोक अदालतें तथा पैरालिगल सेवाएँ.* केंद्रीय विधि प्रकाशन. यह पुस्तक जनहित याचिका (PIL), जिसे न्यायिक सक्रियता का मुख्य उपकरण माना जाता है, पर केंद्रित है। इसमें कानूनी सेवाओं और सामाजिक न्याय के लिए अन्य वैकल्पिक विवाद निवारण तंत्रों पर भी प्रकाश डाला गया है।

3. **कुमार, वि.** (2020). *भारत में सर्वोच्च न्यायालय.* यह पुस्तक भारत के सर्वोच्च न्यायालय की संरचना, कार्य और उसके ऐतिहासिक फैसलों का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान कर सकती है, जिसमें सामाजिक न्याय से संबंधित निर्णय भी शामिल हैं।

4. **मौहम्मद, श.** (2005). *Ambedkar on law, constitution and social justice*. Rawat Publication. यह पुस्तक डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के विचारों पर केंद्रित है, जो सामाजिक न्याय की संवैधानिक नींव के प्रमुख शिल्पकार थे। यह न्यायपालिका के लिए सामाजिक न्याय के "विजन" को समझने में मदद करती है।

अनुसंधान पद्धति :

यह शोध पद्धति मुख्य रूप से गुणात्मक (Qualitative) और विश्लेषणात्मक (Analytical) प्रकृति की होगी, जो कानूनी दस्तावेजों और सैद्धांतिक साहित्य के गहन अध्ययन पर केंद्रित है। *प्राथमिक स्रोत (Primary Sources): भारतीय संविधान (Indian Constitution): विशेष रूप से मौलिक अधिकार (Fundamental Rights) और राज्य के नीति निदेशक तत्व (DPSP) से संबंधित अनुच्छेद (जैसे- अनुच्छेद 14, 21, 32, 226, 39A, 142)* उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के महत्त्वपूर्ण निर्णय (Landmark Judgements of SC and HCs): न्यायिक सक्रियता और सामाजिक न्याय से संबंधित ऐतिहासिक केस, जैसे: जनहित याचिका (PIL) के विकास से जुड़े मामले (उदा. *हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य*)। पर्यावरण, मानवाधिकार, शिक्षा के अधिकार, स्वास्थ्य के अधिकार आदि पर दिए गए महत्त्वपूर्ण निर्णय। प्रासंगिक अधिनियम और कानून (Relevant Acts and Statutes): वे कानून जिनकी व्याख्या न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए की है। न्यायिक नवाचार के उपकरण (Tools of Judicial Innovation): जनहित याचिका (PIL) और न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) के संदर्भ में न्यायालय के आदेश और दिशा-निर्देश।

इसमें द्वितीयक स्रोतों जैसे—संविधान, न्यायिक निर्णय, जर्नल, पुस्तकों, रिपोर्टों, समाचार पत्रों और ऑनलाइन विधिक डेटाबेसों से जानकारी संकलित की गई है। भारतीय न्यायपालिका की सामाजिक न्याय के प्रति दृष्टि भारतीय न्यायपालिका ने संविधान की प्रस्तावना में निहित 'सामाजिक न्याय' की अवधारणा को अपने अनेक निर्णयों में परिभाषित किया है।

1. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)
2. मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978)
3. ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्युनिसिपल कॉरपोरेशन (1985)
4. विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997)

न्यायिक सक्रियता और जनहित याचिका-

1970 के दशक के बाद न्यायपालिका ने जनहित याचिकाओं के माध्यम से सामाजिक मुद्दों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करना प्रारंभ किया। यह अवधारणा न्यायपालिका को "जनता का प्रहरी" बनाती है। उदाहरण—

1. एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ (पर्यावरण मामले)
2. हुसेनारा खातून बनाम बिहार राज्य (अंडरट्रायल कैदी मामला)
3. विनोद कुमार बनाम बिहार राज्य (बाल श्रम मामला)

सामाजिक न्याय की दिशा में न्यायपालिका की उपलब्धियाँ-

1. मानवाधिकार संरक्षण

2. पर्यावरण न्याय

3. लैंगिक समानता

4. दलित व पिछड़े वर्गों के अधिकार

5. सीमाएँ और चुनौतियाँ - न्यायिक सक्रियता कभी-कभी न्यायिक अतिक्रमण का रूप ले लेती है।

i. न्यायालयों के आदेशों के क्रियान्वयन में प्रशासनिक विलंब।
ii. न्यायपालिका की स्वयं की जवाबदेही पर सवाल।
iii. न्याय तक पहुंच में आर्थिक व सामाजिक असमानता।

निष्कर्ष:

आधुनिक भारत में न्यायपालिका की सामाजिक न्याय के प्रति सक्रियता (Judicial Activism) भारतीय संवैधानिक इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम रही है। यह शोध पत्र इस बात की पुष्टि करता है कि न्यायपालिका ने पारंपरिक 'निष्क्रिय' भूमिका से हटकर एक 'सक्रिय' भूमिका अपनाई है ताकि संविधान में निहित सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। □ मूल अधिकारों का विस्तार: न्यायपालिका ने जनहित याचिका (PIL - Public Interest Litigation) के माध्यम से 'विधि की उचित प्रक्रिया' के सिद्धांत का प्रयोग करते हुए, विशेष रूप से अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) के दायरे को व्यापक बनाया है। इसमें स्वच्छ पर्यावरण, स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन और गरिमापूर्ण जीवन जैसे सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को शामिल किया गया है, जो सामाजिक न्याय के मूर्त रूप हैं। दबे-कुचले वर्गों को संरक्षण: न्यायिक सक्रियता ने पिछड़े वर्गों, महिलाओं, बच्चों, बंधुआ मजदूरों, और हाशिए पर पड़े समुदायों के अधिकारों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आरक्षण नीतियों की न्यायिक समीक्षा, कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न की रोकथाम (विशाखा दिशानिर्देश), और पर्यावरण संरक्षण के निर्णय इसके प्रमुख उदाहरण हैं। न्यायपालिका ने कार्यपालिका की निष्क्रियता और उदासीनता को चुनौती दी है, जिससे सरकार को अपनी कल्याणकारी जिम्मेदारियों के प्रति जवाबदेह बनाया जा सका है। यह न्यायिक हस्तक्षेप, विशेषकर गरीबी और असमानता से जुड़े मामलों में, सामाजिक इंजीनियरिंग के रूप में कार्य करता है। हालांकि, शोध पत्र यह भी स्वीकार करता है कि न्यायिक सक्रियता से कार्यपालिका और विधायिका के क्षेत्राधिकार में अतिक्रमण और 'अति-सक्रियता' (Judicial Overreach) की चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। कि सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए न्यायिक संयम और शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

सुझाव:

1. न्यायपालिका को सामाजिक न्याय के साथ-साथ संवैधानिक सीमाओं का भी सम्मान करना चाहिए।
2. न्यायिक प्रक्रिया को सरल और सुलभ बनाया जाए।
3. प्रशासनिक निकायों को न्यायालयों के निर्देशों के क्रियान्वयन में तत्पर होना चाहिए।
4. विधिक शिक्षा में सामाजिक न्याय पर आधारित अध्ययन को बढ़ावा दिया जाए।

संदर्भ सूची

1. Kashyap, S. C. (2012). हमारा संविधान और संवैधानिक विधि
2. Tripathi, P. (2018). मानवाधिकार और भारतीय संविधान
3. Pylee, M. V. (2003). *Constitutional government in India* (5th ed.). S. Chand & Company.
4. Basu, D.D. (2021). Introduction to the Constitution of India. LexisNexis.
5. Austin, Granville. (1999). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford
6. University Press.
7. Bhagwati, P.N. (1985). "Judicial Activism and Social Justice." Journal of the Indian Law
8. Institute.
9. Pathak, R.S. (2018). Judicial Role in Indian Democracy. Eastern Book Company.

10. Mehta, P.B. (2006). The Burden of Democracy. Penguin Books.
11. Supreme Court of India Judgments Archive (1973–2024).
12. Upendra Baxi (1980). The Indian Supreme Court and Politics. Eastern Book Company.
13. Baxi, U. (1986). *Towards a sociology of Indian law*. Satvahan Publication.
14. Kashyap, S. C. (1997). *Judiciary legislature interface in politics India*. Konark Publishers.
15. Malik, L. (Ed.). (2014). *Judicial activism in India - A festschrift in honour of Justice V.R.*
16. Rao, M. N. (1997). *Judicial activism*. Supreme Court Cases Journal,

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation